बुद्ध को तप की पूर्व परंपरा छोड़कर ध्यान-समाधि की परंपरा पर ही अधिक भार देना था जब कि महावीर को तप की पूर्व परंपरा बिना छोड़े भी उसके साथ आध्यात्मिक शुद्धि का संबन्ध जोड़कर ही ध्यान-समाधि के मार्ग पर भार देना था। यही दोनों की प्रवृत्ति और प्ररूपणा का मुख्य अन्तर था। महावीर के और उनके शिष्यों के तपस्वी-जीवन का जो समकालीन जनता के ऊपर असर पड़ता था उससे बाधित होकर के बुद्ध को अपने भिक्षुसङ्घ में अनेक कड़े नियम दाखिल करने पड़े जो बौद्ध विनय-पिटक को देखने से मालूम हो जाता है[1]। तो भी बुद्ध ने कभी बाह्य-तप का पक्षपात नहीं किया बल्कि जहाँ प्रसंग आया वहाँ उसका परिहास ही किया। खुद बुद्ध की इस शैली को उत्तरकालीन सभी बौद्ध लेखकों ने अपनाया है फलतः आज हम यह देखते हैं कि बुद्ध का देहदमन-विरोध बौद्ध संघ में सुकुमारता में परिणत हो गया है, जब कि महावीर का बाह्य तपोजीवन जैन-परंपरा में केवल देहदमन में परिणत हो गया है जो कि दोनों सामुदायिक प्रकृति के स्वाभाविक दोष हैं, न कि मूलपुरुषों के आदर्श के दोष।

(४)

आचार-विचार

तथागत बुद्ध ने अपने पूर्व-जीवन का वर्णन करते हुए अनेकविध आचारों का वर्णन किया है, जिनको कि उन्होंने खुद पाला था। उन आचारों में अनेक आचार ऐसे हैं जो केवल निर्ग्रन्थ-परंपरा में ही प्रसिद्ध हैं और इस समय भी वे आचार आचारांग, दशवैकालिक आदि प्राचीन सूत्रों में निर्ग्रन्थ के आचार रूप से वर्णित हैं। वे आचार संक्षेप में ये हैं—नग्नत्व—वस्त्रधारण न करना, 'आइए भदन्त!' 'खड़े रहिये भदन्त!' ऐसा कोई कहे तो उसे सुना-अनसुना कर देना, सामने लाकर दी हुई भिक्षा का, अपने उद्देश्य से बनाई हुई भिक्षा का, और दिये गए निमन्त्रण का अस्वीकार; जिस बर्तन में रसोई पकी हो उसमें से सीधी दी गई भिक्षा का तथा खल आदि में से दी गई भिक्षा का अस्वीकार; जीमते हुए दो में से उठकर एक के द्वारा दी जाने वाली भिक्षा का, गर्भिणी स्त्री के द्वारा दी हुई भिक्षा का और पुरुषों के साथ एकान्त में स्थित ऐसी स्त्री के द्वारा दी जानेवाली भिक्षा का, बच्चों को दूध पिलाती हुई स्त्री के द्वारा दी जानेवाली भिक्षा का अस्वीकार; उत्सव, मेले और यात्रादि में जहाँ सामूहिक भोजन बना हो वहाँ से भिक्षा का

१. उदाहरणार्थ—वनस्पति आदि के जन्तुओं की हिंसा से बचने के लिए चतुर्मास का नियम—बौद्ध संघनो परिचय पृ० २२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्वीकार; जहाँ बीच में कुत्ता जैसा प्राणी खड़ा हो, मक्खियाँ भिनभिनाती हों वहाँ से भिक्षा का अस्वीकार; मत्स्य माँस [1]शराब आदि का अस्वीकार; कभी एक घर से एक कोर, कभी दो घर से दो कोर आदि की भिक्षा लेना, तो कभी एक उपवास, कभी दो उपवास आदि करते हुए पन्द्रह उपवास तक भी करना; दाढ़ी-मूछों का लुंचन करना, खड़े होकर और उक्कडु आसन पर बैठकर तप करना; स्नान का सर्वथा त्याग करके शरीर पर मल धारण करना, इतनी सावधानी से जाना-आना कि जलबिंदुगत या अन्य किसी सूक्ष्म जन्तु का घात न हो, सख्त शीत में खुले रहना अज्ञ और अशिष्ट लोगों के थूके जाने, धूल फेंकने, कान में सलाई घुसड़ने आदि पर रुष्ट न होना[2]।

बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित उक्त आचारों के साथ जैन आगमों में वर्णन किये गए निर्ग्रन्थ-आचारों का मिलान करते हैं तो इसमें संदेह नहीं रहता कि बुद्ध की समकालीन निर्ग्रन्थ-परंपरा के वे ही आचार थे जो आज भी अक्षरशः स्थूल रूप में जैन-परंपरा में देखे जाते हैं। तब क्या आश्चर्य है कि महावीर की पूर्वकालीन पार्श्वापत्यिक-परंपरा भी उसी आचार का पालन करती हो। आचार का कलेवर भले ही निष्प्राण हो जाए पर उसे धार्मिक जीवन में से च्युत करना और उसके स्थान में नई आचारप्रणाली स्थापित करना यह काम सर्वथा विकट है। ऐसी स्थिति में भ० महावीर ने जो बाह्याचार निर्ग्रन्थ-परंपरा के लिये अपनाया वह पूर्वकालीन निर्ग्रन्थ परंपरा का ही था, ऐसा मानें तो कोई अत्युक्ति न होगी; अतएव सिद्ध होता है कि कम से कम पार्श्वनाथ से लेकर सारी निर्ग्रन्थ-परंपरा के आचार एक से ही चले आए हैं।

(५)

चतुर्याम

बौद्ध पिटकान्तर्गत 'दीघनिकाय' और 'संयुत्त निकाय' में निर्ग्रन्थों के महाव्रत की चर्चा आती है।[3] 'दीघनिकाय' के 'सामञ्ञफलसुत्त' में श्रेणिक—बिंबिसार के पुत्र अजातशत्रु—कुणिक ने ज्ञातपुत्र महावीर के साथ हुई अपनी मुलाकात का वर्णन बुद्ध के समक्ष किया है, जिसमें ज्ञातपुत्र महावीर के मुख से

१. सूत्रकृताङ्ग २-२-२३ में निर्ग्रन्थ भिक्षु का स्वरूप वर्णित है। उसमें उन्हें 'अमज्जमंसासिणो'—अर्थात् मद्य-माँस का सेवन न करने वाला—कहा है। निस्संदेह निर्ग्रन्थ का यह औत्सर्गिक स्वरूप है जो बुद्ध के उक्त कथन से तुलनीय है।

२. दीघ० महासीहनाद सुत्त० ८। दशवै० अ० ५.; आचा० २. १.

३. दीघ० सु० २। संयुत्तनिकाय Vol 1. p. 66

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org